राष्ट्रवादियों द्वारा औपनिवेशिक तंत्र की आर्थिक समीक्षा

Avinash Kumar
Assistant Professor & Head
Department of History
Patna College, Patna-800005
Mobile No. 6202393206
E-mail Id: avinashisavailable@gmail.com

***यूं तो इस विषय पर कई किताबें मौजूद हैं, एक-एक बढ़कर। परंतु मेरे मुताबिक सर्वश्रेष्ठ किताब प्रो. बिपन चन्द्र की "भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय और विकास(1885-1905)" है,, जिस पर उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएचडी की डिग्री मिली।**

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक उदारपंथी नेताओं को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने उन्नीसवी सदी के अपने समकालीन अन्य आंदोलनों के मुकाबले सबसे पहले औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के आर्थिक पहलुओं का विश्लेषण किया।

संभवतः राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में इन्ही नेताओं का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान था, क्योंकि राष्ट्रवादी आंदोलन की नींव रखने में इस आर्थिक समीक्षा और उससे जुड़े दूसरे मुद्दों को बड़े पैमाने पर प्रचारित किया गया। भाषणों, परचों, अखबारों, नाटकों, गीतों और प्रभात-फेरियों के माध्यम से भारतवासियों तक यह बात पहुँचाई गई कि ब्रिटिश राज एक सुविचारित योजना के तहत भारत को लूटने की प्रक्रिया में संलग्न है।

19वी शताब्दी के पूर्वार्ध में भारतीय बुद्धिजीवियों ने ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का समर्थन किया, क्योंकि उनका मानना था कि ब्रिटेन दुनिया का सबसे ज्यादा उन्नत देश है और उन्हें आशा थी कि भारत के आधुनिकीकरण में ब्रिटेन मदद देगा।

आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटेन दुनिया की सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभर रहा था, इसलिए भारतीय यह आशा करते थे कि ब्रिटेन आधुनिक विज्ञान व तकनीक और अपने पूँजीवादी आर्थिक संगठन द्वारा भारत में उत्पादकता को बढ़ावा देगा और इसे विकास की एक निश्चित दिशा में आगे ले जायेगा। यद्यपि आरंभिक राष्ट्रवादी विदेशी शासन के राजनीकि मनोवैज्ञानिक और आर्थिक दुष्परिणामों से अपरिचति नही थे, तब भी वे इस आशा में उनका समर्थन करते आ रहे थे कि इसके द्वारा भारत का पुनर्निर्माण हो सकेगा, एक आधुनिक देश के रूप में भारत खड़ा हो सकेगा।

किंतु 1860 के आसपास आरंभिक राष्ट्रवादियों का भ्रम टूटने लगा। उन्होंने जिस सामाजिक विकास की आशा की थी, दूर-दूर तक उसका कोई नामोनिशान नही दिख रहा था। इस सच्चाई ने उनकी आँखें खोल दी कि नये क्षेत्रों में जो प्रगति हुई है, वह मात्र दिखावटी है। यह दिखावटी प्रगति भी जहाँ से शुरू हुई थी, वही रुकी हुई थी, जबकि दूसरी ओर पूरा देश लगातार पिछड़ेपन और गरीबी के गर्त में गिरता जा रहा है। इस प्रकार वे ब्रिटिश शासन के वास्तविक स्वरूप को धीरे-धीरे पहचानने लगे थे। अब उन्होंने साम्राज्यवादी सरकार की आर्थिक नीतियों और भारत पर उसके दुष्प्रभावों की जाँच-पड़ताल करनी शुरू की।

यद्यपि 1870 से 1905 के बीच अनेक भारतीय बुद्धिजीवियों ने ब्रिटिश शासन के आर्थिक प्रभावों की समीक्षा की, किंतु सबसे पहले दादाभाई नौराजी (**भारत के पितामह**) ने अपनी पुस्तक '**पावटी एंड अनब्रिटिश रूल इन इडिया**' में '**आर्थिक निकास**' की अवधारणा को प्रस्तुत किया और ब्रिटिश शासन को भारत की गरीबी का प्रमुख कारण बताया।

दादाभाई नौराजी के समकालीन न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे ने भारतीय जनता को औद्योगिक विकास के महत्त्व को समझाया। अवकाशप्राप्त आई.सी.एस. अधिकारी रोमेशचंद्र दत्त ने 1757 के बाद से लेकर तब तक के ब्रिटिश शासन के समूचे आर्थिक कार्य-कलाप की गहन छानबीन कर भारत का आर्थिक इतिहास (**The Economic History of India**) लिखा।

इसके अलावा जी.बी. जोशी, पी. सुब्रह्मण्यम अय्यर, गोपालकृष्ण गोखले, पृथ्वीशचंद्र राय जैसे सैकड़ों राजनीतिक कार्यकर्ताओं और पत्रकारों ने तत्कालीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की गहराई से जांच-पड़ताल की और यह निष्कर्ष निकाला कि भारत के आर्थिक विकास के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा ब्रिटिश उपनिवेशवाद ही है।

इन आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अखिल भारतीय स्तर पर इस विचार को प्रचारित किया कि ब्रिटिश शासन भारत के शोषण पर आधारित है, भारत को लगातार गरीब बना रहा है और आर्थिक पिछड़ापन तथा अल्पविकास पैदा कर रहा है।

आरंभिक राष्ट्रवादियों को यह अच्छी तरह समझ में आ गया था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मूल इसी में निहित है कि भारतीय अर्थव्यवस्था हमेशा ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के द्वारा शोषित होती रहे। उन्होंने यह जान लिया कि अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए उपनिवेशवाद किस तरह व्यापार, उद्योग और वित्त के माध्यम से अपना वर्चस्व स्थापित करता है।

राष्ट्रवादियों ने अनुभव किया कि उपनिवेशवाद अब विभिन्न प्रकार के करों, लूट-खसोट और व्यवसायिक बनियागीरी के कच्चे हथियारों का प्रयोग नही कर रहा है, बल्कि अब वह उन्मुक्त व्यापार और विदेशी पूँजी-निवेश के जटिल-तंत्र की आड़ लेकर शोषण का कुचक्र चला रहा है। इस क्रम में राष्ट्रवादी इस नतीजे पर पहुँचे कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत को मात्र एक आपूर्तिकत्ता बनाकर रख दिया है, जो ब्रिटेन को न केवल खाद्य-सामग्री और कच्चे माल की आपूर्ति करता आ रहा है बल्कि इनके लिए ब्रिटिश पूँजी-निवेश का बाजार बनता जा रहा है।

इन राष्ट्रवादियों ने लगभग सभी महत्त्वपूर्ण सरकारी आर्थिक नीतियों के खिलाफ बौद्धिक स्तर पर सशक्त आंदोलन चलाये और भारतीय अर्थव्यवस्था की ब्रिटेन पर निर्भरता को पूरी तरह खत्म करने की जोरदार वकालत की। उन्होंने इस बात के लिए आंदोलन चलाया कि भारत के लिए विकास का एक ऐसा वैकल्पिक रास्ता अपनाया जाए जो भारतीय अर्थव्यवस्था को एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित कर सके।

आरंभिक राष्ट्रवादी आर्थिक विश्लेषकों ने अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया कि किस प्रकार अनाज एवं कच्चे माल के रूप में भारत का धन इंग्लैंड भेजा जा रहा है और फिर किस प्रकार वह विनिर्मित उत्पादों का रूप लेकर भारतीय बाजार पर कब्जा कर रहा है। इनके अनुसार, भारतीय धन इंग्लैंड पहुँचकर वापस भारत आता है और पुनः उसे यहाँ पूँजी के रूप में लगा दिया जाता है। इस प्रकार देश के शोषण का दुश्चक्र बन चुका है।

प्रारंभिक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों ने सरकार के इस अन्यायपूर्ण शोषण के विरुद्ध भारतीय बुद्धजीवियों को संगठित करने का प्रयास किया और भारतीय अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक दासता से मुक्त करने की वकालत की। उन्होंने इसके लिए आंदोलन चलाया कि भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप भारतीय हितों के अनुरूप हो, ताकि देश का समग्र एवं आधुनिक ढंग से विकास हो सके।

गरीबी की समस्या

उदारपंथी देशभक्तों ने भारतवासियों की गरीबी को एक राष्ट्रीय मुद्दा बनाया जिससे विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों और जातियों में बंटे भारतीय समाज को एकजुट करने में सहायता मिली।

राष्ट्रवादियों का तर्क था कि सरकारी नीतियों और मालगुजारी की भारी दरों के कारण आम भारतीय किसान और दस्तकार गरीब है और दिन-प्रतिदिन और गरीब होता जा रहा है। गरीबी न तो ईश्वर की देन है, न यह हमारी नियति है, न यह हमें विरासत में भोगनी है और न ही ऐसा कोई कारण है कि इसे दूर नहीं किया जा सकता है। यह गरीबी मानव-निर्मित है और इसे पूरी तरह खत्म किया जा सकता है। इस गरीबी के कारण पूँजी का संचय और निर्माण नहीं हो पा रहा है, जिससे भारतवासियों का जीवन-स्तर बहुत निम्न हो गया है।

नौरोजी की गणना के अनुसार भारतवासियों की प्रति व्यक्ति आय 20 रुपये थी, जबकि डिग्वी के अनुसार यह 1899 में 18 रुपये थी। अकाल और महामारी जैसी प्राकृतिक विपदाओं की तो अलग ही कहानी थी।

राष्ट्रीय आय-संबंधी प्रसिद्ध विशेषज्ञ कोलिन क्लर्क के हिसाब से 1925-34 के दौरान संसार में सबसे कम प्रति व्यक्ति आय भारत और चीन की थी। एक अंग्रेज की आय एक भारतीय की आय से पाँच गुना अधिक थी।

औद्योगिक विकास

प्रारंभिक राष्ट्रवादी चिंतकों ने आर्थिक विकास को पहली जरूरत बताया और इसके लिए आधुनिक उद्योगों के तेजी से विकास की बात कही।

शुरूआती राष्ट्रवादियों का पहला लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था को आधुनिक तकनीकी और पूँजीवादी उद्यमों पर आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना था। इसके लिए उन्होंने आधुनिक उद्योगों के विकास पर जोर दिया।

जी.बी. जोशी का कहना था कि **'उद्योगीकरण एक बेहतर और ऊँचे दर्जे की सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है।'** इसी तरह रानाडे मानते थे कि **'स्कूलों और कालेजों के बजाय कारखाने कही ज्यादा प्रभावशाली ढ़ंग से राष्ट्रीय गतिविधियों को नया जीवन दे सकते हैं।'**

इन राष्ट्रवादियों का मानना था कि विभिन्न वर्गों में बंटी भारतीय जनता को एक करने में आधुनिक उद्योग बहुत सहायक सिद्ध होंगे और इस तरह सामूहिक हितों को लेकर एक राष्ट्रीय पहचान बनेगी।

सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने 1902 में **'बंगाली'** में लिखा था, "राजनीतिक अधिकारियों की लड़ाई भारत की विभन्नि जातीयताओं को कुछ समय के लिए तो जरूर एक सूत्र में बाँध सकती है, लेकिन जैसे ही ये अधिकार मिल जायेंगे, उन सबके अपने-अपने हित फिर अलग-अलग हो जायेंगे। इन जातीयताओं के आर्थिक हितों को अगर एक सूत्र में पिरो दिये जाए, तो यह सूत्र फिर कभी नहीं टूटेगा। वाणिज्यिक और औद्योगिक गतिविधियां बहुत मजबूत एकता का सूत्र होती हैं और इस कारण भारतीय राष्ट्र की स्थापना के लिए ये बहुत महत्त्वपूर्ण कारक हैं।"

राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश वित्तीय नीतियों की कड़ी आलोचना की और आरोप लगाया कि करों को इस तरह बढ़ाया जाता है कि गरीबों पर उसका दबाव लगातार सीमा से अधिक बढ़ता जा रहा है और ब्रिटिश पूँजीपति एवं नौकरशाह मालामाल होते जा रहे हैं। उनका कहना था कि ब्रिटेन के औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए खर्च करने पर पूरा जोर दिया जा रहा है, जबकि विकास एवं जनकल्याण के क्षेत्र में खर्च करने में कंजूसी बरती जा रही है।

राष्ट्रवादियों ने सेना पर निरंतर बढ़ते खर्च की निंदा और विरोध किया, क्योंकि ब्रिटिश सराकर नये क्षेत्रों को विजित करने और एशिया व अफ्रीका में औपनिवेशिक शासन को बनाये रखने के लिए सेना का इस्तेमाल करती जा रही थी।

विदेशी पूँजी बनाम देशी पूँजी

उद्योगीकरण के प्रश्न पर सभी राष्ट्रवादी एकमत थे और उनमें इस बात पर भी प्रायः आम सहमति थी कि भारत का उद्योगीकरण बहुत जरूरी क्यों न हो, फिर भी यह भारतीय पूँजी पर ही आधारित होना चाहिए, विदेशी पूँजी पर नही।

इसके विपरीत ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों, राजनयिकों और अधिकारियों ने 1840 से ही इस बात की जोरदार वकालत शुरू कर दी थी कि भारत के विकास के लिए विदेशी पूँजी-निवेश बहुत जरूरी है और साथ ही विकास के लिए यहाँ कानून और व्यवस्था की स्थिति भी ठीक होनी चाहिए। 1899 में वायसराय लार्ड कर्जन ने कहा था कि "**भारत के 'राष्ट्रीय विकास' के लिए विदेशी पूँजी एक अनिवार्य शर्त है।"**

आरंभिक राष्ट्रवादियों ने विदेशी पूँजी का मजबूत तर्कों के आधार पर कड़ा प्रतिवाद किया। उनका तर्क था कि भारतीय पूँजी को बढ़ावा देने के बजाय विदेशी पूँजी ने उसे परे ढ़केल कर न सिर्फ उसके स्थान पर कब्जा कर लिया है, बल्कि भारतीय पूँजी के फलने-फूलने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी है।

इसके विपरीत भारतीय पूँजी यहाँ से निचोड़कर विदेश ले जाई जा रही है और इस तरह भारतीय अर्थव्यवस्था पर इंग्लैंड की पकड़ दिन-ब-दिन मजबूत होती जा रही है। विदेशी पूँजी के द्वारा देश के विकास की कोशिश करने का मतलब सिर्फ यह होगा कि हम आज के तुच्छ लाभों की कीमत पर अपना सारा भविष्य बेंच दें। दादाभाई नौरोजी ने कहा कि 'विदेशी पूँजी भारतीय संसाधनों की लूट और शोषण का जरिया है।'

1901 में विपिनचंद्र पाल ने लिखा था "देश के प्राकृतिक संसाधानों के दोहन में विदेशी पूँजी ज्यादातर ब्रिटिश पूँजी के इस्तेमाल से कोई मदद के बजाय दरअसल हुआ यह है कि यह भारतीय जनता की आर्थिक दशा सुधारने में सबसे बड़ी बाधा बन गई है। यह जिस हद तक एक आर्थिक खतरा है, उसी हद तक एक राजनीतिक खतरा भी है, और जितनी जल्दी हम इस दोमुँही बुराई को उखाड़ फेंकें, उतना ही हमारे भविष्य के लिए यह बेहतर होगा।'

आर्थिक निकास का सिद्धांत

राष्ट्रवादियों ने भारतीय पूँजी व संपत्ति के निकास के प्रश्न को केंद्र-बिंदु बनाया, जिसे '**आर्थिक निकास**' की संज्ञा दी गई है। भारतीय उत्पाद का वह हिस्सा, जो जनता के उपभोग के लिए उपलब्ध नहीं था, राजनीतिक कारणों से जिसका प्रवाह इंग्लैंड की ओर हो रहा था और जिसके बदले में भारत को कुछ नहीं प्राप्त होता था, उसे 'आर्थिक निकास' कहा गया है।

आरंभिक राष्ट्रवादी नेताओं ने बताया कि भारतीय पूँजी और संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा भारत में कार्यरत ब्रिटिश प्रशासनिक एवं सैनिक अधिकारियों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन के रूप में, भारत सरकार द्वारा द्वारा ब्रिटेन से लिए गये ऋणों के ब्याज के रूप में, ब्रिटिश पूँजीपतियों द्वारा भारत में कमाये गये मुनाफे के रूप में और ब्रिटेन में भारत सरकार के खर्चे के रूप में लगातार इंग्लैंड चला जा रहा है।

भारत से पूँजी और संपत्ति के इस बहाव की एक और शक्ल थी कि भारत के निर्यात व्यापार के मुकाबले उसका आयात व्यापार बढ़ने लगा और इस पूरे लेन-देन में भारत के हाथ कुछ भी नहीं लगता था। राष्ट्रवादियों ने जो हिसाब लगाया, उसके अनुसार भारत की राजस्व वसूली को आधा हिस्सा, जो उस समय भूराजस्व से भी अधिक था, और भारत की कुल बचत के एक तिहाई हिस्से से ज्यादा था, ब्रिटेन को भेज दिए जाता था।

इस **आर्थिक निकास** के कारण देश में पूँजी का निर्माण एवं संग्रहण नहीं हो सका, जबकि इसी धन ने इंग्लैंड में औद्योगिक विकास को गति प्रदान की।

इस तरह राष्ट्रवादियों ने पूँजी-निकास के सिद्धांत के द्वारा ब्रिटिश शासन के शोषक चरित्र को जनता के समक्ष उजागर किया। इस मुद्दे ने भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रवादियों ने स्पष्ट कर दिया कि औपनिवेशिक शासन जानबूझकर देश को विनाश की ओर ले जा रहा है।

भारत इसलिए गरीब है क्योंकि यह औपनिवेशिक हितों के अनुरूप शासित किया जा रहा है। राष्ट्रवादी स्थिति को सुधारने के लिए सरकार की आर्थिक नीतियों में बदलाव चाहते थे। उन्होंने आर्थिक दोहन को रोकने के साथ-साथ सरकार से भू-राजस्व में कमी करने, नमक कर का उन्मूलन करने, उच्च मध्यवर्गीय लोगों पर आयकर लगाने, इस वर्ग द्वारा उपभोग की जा रही वस्तुओं पर उत्पाद-कर आरोपित करने और भारतीय उद्योगों को संरक्षण देने की माँग की।

राष्ट्रवादियों ने इस बात को दोहराया कि भारत का उचित आर्थिक विकास तभी संभव है, जब उद्योगीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत हो; विकास में भारतीय पूँजी का प्रयोग किया जाए, क्योंकि यह विदेशी पूँजी से नही हो सकता है। विदेशी पूँजी एक ऐसी बुराई है जो निरंतर फैलती जाती है, उसे कम नही किया जा सकता है; यह किसी देश का विकास तो किसी हालत में करती ही नही, बल्कि उसका शोषण करती है और दिन-प्रतिदिन उसे पिछड़ेपन के गर्त में ढ़केलती जाती है।

इन नेताओं का कहना था कि भारत में विदेशी पूँजी-निवेश के खतरे अत्यंत घातक हो सकते हैं क्योंकि इससे राजनीतिक वशीकरण तथा विदेशी निवेशकों के हितों का पक्ष-पोषण होता है और देश में विदेशी शासन स्थायी हो जाता है। 1889 में 'हिंदू' ने लिखा था, "जिस देश में विदेशी पूँजी अपनी जड़ें जमा लेती है, उस देश का प्रशासन तत्काल विदेशी पूँजीपतियों की चिंता का विषय बन जाता है।"

राष्ट्रवादी लेखकों ने ब्रिटिश सरकार के इस दावे का तर्कपूर्ण खंडन किया कि भारत में विदेशी व्यापार के विकास एवं रेलवे की स्थापना से देश की प्रगति हुई है। उन्होंने तर्क दिया कि स्वदेशी उद्योगों पर विदेशी व्यापार और रेलवे का नकारात्मक प्रभाव पड़ा है और इसलिए ये आर्थिक विकास की नही, बल्कि औपनिवेशिक विकास और भारतीय अर्थव्यवस्था के निरंतर पिछड़ते-टूटते जाने के प्रतीक हैं।

इन नेताओं ने स्पष्ट किया कि विदेशी व्यापार को मात्रात्मक आधार पर नही तौला जाना चाहिए, बल्कि यह देखा जाना चाहिए कि यह विदेशी व्यापार किस ढ़ंग का है, हमारे यहाँ से जो चीजें विदेश भेजी जाती हैं, उनके बदले में हमें मिलता क्या है और फिर सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस विदेशी व्यापार का भारतीय उद्योगों और कृषि पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

उन्नीसवी सदी में विदेशी व्यापार के नाम पर भारत से केवल कच्चे माल का निर्यात किया जाता था और उसके बदले में उत्पादित वस्तओं का आयात किया जाने लगा था। इस प्रकार विदेशी व्यापार ने भारत को कृषिगत वस्तुओं एवं कच्चे माल का निर्यातक तथा तैयार माल का आयातक बना दिया है।

राष्ट्रवादियों का कहना था कि अंग्रेजों ने रेलवे का विकास अपने वाणिज्यिक हितों को पूरा करने के उद्देश्य से किया है, न कि भारत को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए। रेलवे से औद्योगिक क्रांति नही, बल्कि वाणिज्यिक क्रांति हुई, जिसका पूरा लाभ ब्रिटेन को मिला। अंग्रेजों द्वारा भारत में रेलवे के विकास का उद्देश्य देश के दूर-दराज के क्षेत्रों से कच्चे माल का दोहन एवं विनिर्मित सामान को उन क्षेत्रों में पहुँचाना था।

जी.बी. जोशी ने तो स्पष्ट कहा था कि **'रेलवे दरअसल ब्रिटिश उद्योगों के लिए भारत की तरफ से दी जानेवाली आर्थिक सहायता है।'** तिलक के शब्दों में **'यह दूसरे की पत्नी के सिंगार-पटार का खर्च उठाने जैसी बात है।'**

इसी प्रकार इस्पात उद्योग को बढ़ाने एवं मशीनीकरण करने का कार्य भी औपनिवेशिक हितों को ध्यान में रखकर ही किया गया था।

आरंभिक राष्ट्रवादियों ने बताया कि भारत के औद्योगिक विकास में सबसे बड़ी बाधा मुक्त व्यापार की नीति थी। इस नीति ने एक ओर भारतीय दस्तकारी उद्योग को तबाह कर दिया, तो दूसरी ओर इस नीति के कारण भारत के नवजात और

अविकसित उद्योगों को पश्चिम विकसित और संगठित उद्योगों से मुकाबला करने को मजबूर किया। स्वाभावतः यह मुकाबला पूरी तरह गैर-बराबरी का और अनुचित था।

भारतीय पूँजी और संपत्ति के भारत से निकास की बात सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने उठाई थी। मई 1867 में उन्होंने कहा था कि ब्रिटेन भारत का खून चूस रहा है। उसके बाद अगले 50 सालों तक उन्होंने इसके खिलाफ आंदोलन चलाया और हर संभावित साधन और माध्यम से इस मुद्दे के प्रति लोगों को जागरूक करने की कोशिश की।

राष्ट्रवादियों ने खुले तौर पर कहा कि **भारतीय संपत्ति और पूँजी का विदेश में जाना ही भारत की गरीबी का मूल कारण है और यही भारत में ब्रिटिश शासन की सबसे बड़ी बुराई है।**

उपनिवेशवादी अर्थतंत्र के विश्लेषण के क्रम में अन्य राष्ट्रवादी नेताओं, पत्रकारों ने भी दादाभाई के कदमों का अनुसरण किया और ब्रिटिश शासन के शोषक चरित्र को जनता के समक्ष रखा जिससे साम्राज्यवादी अर्थतंत्र के खिलाफ माहौल तैयार करने में सहायता मिली।

राष्ट्रवादियों की इस आर्थिक समीक्षा और पूँजी-निकास के मुद्दे ने राजनीतिक चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने ब्रिटिश शासन की नैतिक बुनियादों की जड़ें उखाड़ फेंकी और इस विश्वास को झूठा साबित कर दिया कि ब्रिटिश शासन का चरित्र लोक-कल्याणकारी है और इसके इरादे नेक हैं।

साम्राज्यवादी शासक और उनके समर्थक बार-बार यह दुहाई देते रहे कि भारत के आर्थिक विकास के लिए यहाँ बिटिश शासन का बने रहना आवश्यक है।

राष्ट्रवादियों ने इस तर्क का जोरदार खंडन किया और कहा कि भारत सिर्फ इसी कारण आर्थिक रूप से पिछड़ा है कि ब्रिटिश शासन यहाँ सिर्फ ब्रिटिश व्यापार, उद्योग और पूँजी के हितों के लिए काम कर रहा है और औनपनिवेशिक शासन का नतीजा हर हाल में गरीबी और पिछड़ापन ही होता है।

राष्ट्रवादियों ने बार-बार दोहराया कि **"जनकल्याण की नकाब के पीछे ब्रिटिश शासन लगातार इस देश का शोषण करता आ रहा है। यह शोषण इतने गुपचुप ढंग से किया जा रहा है कि दुनिया को उसका पता ही न चल पाये।"**

आरंभिक नेताओं ने प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों को देश की राजनीतिक गुलामी के सवाल से जोड़ा और भारतीयों के दिल-दिमाग में यह बात बैठा दिया कि ब्रिटिश सरकार का प्रशासन 'केवल शोषण का हथियार है', इसलिए भारतीय हितों के अनुकूल नीतियां और कार्यक्रम तभी संभव हैं, जब राजनीतिक सत्ता और प्रशासन पूरी तरह भारतीयों के नियंत्रण में ही हो। ब्रिटिश शासन के प्रति पैदा हुआ यह अविश्वास धीरे-धीरे विदेशी सरकार के प्रति राजनीतिक विरोध की शक्ल लेने लगा।

यद्यपि आरंभिक राष्ट्रवादी नेता राजनीति और राजनीतिक तरीकों में उदारपंथी थे और उनमें से कई ब्रिटिश प्रशासन के प्रति निष्ठावान भी थे, फिर भी, आर्थिक आंदोलन का यह परिणाम हुआ कि इसने ब्रिटिश साम्राज्य की राजनैतिक जड़ों को काट दिया और भारतीय जनमानस में उसके प्रति अविश्वास और बेगानगी, बल्कि विद्रोह तक के बीज बो दिये।

यही कारण है कि 1875 से 1905 तक का समय भारत में बौद्धिक अशांति का समय रहा और इस अवधि में राष्ट्रीयता की चेतना का फैलाव हुआ। इस तरह इस समय राष्ट्रीय आंदोलन के बीज बोये गये।